123

ISSN 2231-3885

संवेद

मार्च, 2021 मूल्य : ₹200

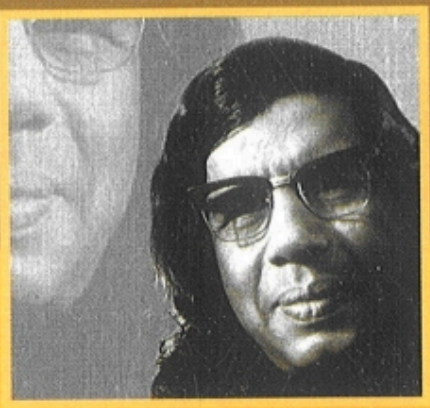

फणीश्वर नाथ रेणु

शताब्दी स्मरण

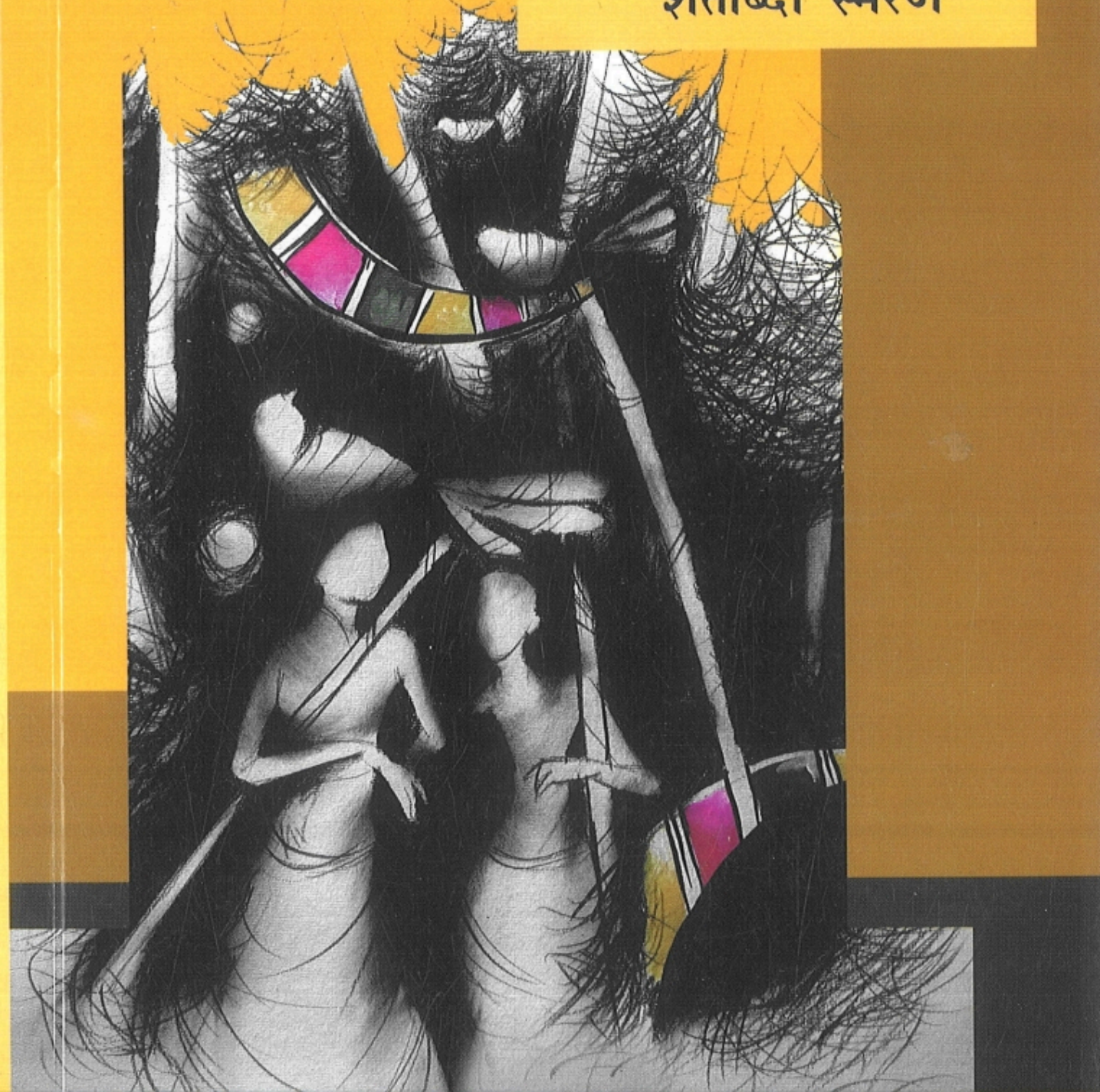

रेखा सेठी

प्राणों की धमक
(पहलवान की ढोलक)

फणीश्वरनाथ रेणु 'देस' की मिट्टी के कथाकार हैं। वे इस मिट्टी का मोल जानते हैं और देस की धड़कन पहचानते हैं। उनकी सभी कहानियों में पाठक देस से उनकी पहचान को महसूस कर पाता है। 'प्राणों में घुलते हुए रंग' हों या 'आदिम रात्रि की महक'—इन कहानियों के शीर्षक ही रेणु की कहानियों में देस के रूप-रस-गन्ध की ऐंद्रीय उपस्थिति का पता देते हैं। उनकी यही विशेषता उन्हें बड़ा लेखक बनाती है। बड़ा इस अर्थ में कि समय के बदलने के साथ-साथ उनकी रचनाओं से ध्वनित अर्थ नये मायनों में फिर-फिर गूँजने लगते हैं। महामारी के इस दौर में रेणु के साहित्य के कितने बिम्ब सजीव हो जाते हैं, जहाँ मलेरिया, हैजा और प्लेग से मरती गाँवों की बड़ी आबादी अपनी लाचारी और बेबसी में भी अपनी जिजीविषा को बचाए रखती है। महामारी के इन दिनों में रेणु की कहानी 'पहलवान की ढोलक' अनेक नयी अर्थ-छवियों के साथ मन में लगातार बज रही है।

कहानी की शुरूआत अँधेरी-काली रात के वर्णन से होती है—"जाड़े का दिन। अमावस्या की रात—ठण्डी और काली। मलेरिया और हैजे से पीड़ित गाँव भयार्त शिशु की तरह थर-थर काँप रहा था। पुरानी और उजड़ी बाँस-फूस की झोपड़ियों में अन्धकार और सन्नाटे का सम्मिलित साम्राज्य। अन्धेरा और निस्तब्धता!" अँधेरे और निस्तब्धता का साम्राज्य उस देस की पहचान है जिसे रेणु ने लगभग जबरन हमारे साहित्यिक आस्वाद का हिस्सा बनाया। कहने को तो उनके पहले और उनके साथ भी गाँव समाज पर केन्द्रित उपन्यास और कहानियाँ लिखी गयी हैं लेकिन रेणु के वर्णन में सुख-दुख की जो द्विआभा है, वह कहीं और नहीं है। मलेरिया और हैजे से पीड़ित गाँव में रात के पसरे सन्नाटे के बीच जो आवाजें उठ रही हैं इन आवाजों के दर्द ने हमारे सपने भी लील दिए हैं।

'मैला आँचल' में भी चारों ओर बीमारी का ही साम्राज्य है और डॉक्टर प्रशान्त मलेरिया की जाँच करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सबसे बड़ी बीमारी गरीबी ही है। इस कहानी में भी गाँव के इस वर्णन में यही निष्कर्ष प्रतिध्वनित होता है। आज फिर, महामारी के इस दौर में गरीबी और आर्थिक विषमता, हाशिए पर पड़े जन-समाज को कितना बेबस कर सकती

है, उसके निशान हम लगातार अपने आस-पास देख रहे हैं। उनकी सुनवाई कहीं नहीं है जैसे कि वे इस देश के मानचित्र में शामिल ही ना हों। रेणु की कहानियाँ देस के उस हिस्से को देश के मानचित्र पर जगह दिलाने की मुहिम हैं। रेणु की विशेषता यह भी है कि वे जब भी ऐसी निरीहता, बेबसी, विषमता पर ध्यान ले जाते हैं तो उनका ध्यान इस देस की पूरी बनावट पर जाता है और वह देस, दुख की निस्तब्ध अँधेरी रात के बीच भी हँसता-बोलता हुआ जिन्दगी जीने की हर कोशिश करता है, मिल-बैठकर सुख-दुख साझा करता है।

हिन्दुस्तान में जन-जीवन की जिन्दगी कभी अकेली नहीं होती। जिन्दगी की हर विपरीतता को चुनौती देने के लिए जैसे उनके पास भी एक ढोलक हो जो पहलवान की ढोलक की तरह हर बार यही सन्देश देती है कि "चट्-धा, गिड़-धा, चट्-धा, गिड़-धा अर्थात् 'आजा भिड़जा!!' बीच-बीच में 'चटाक् -चट्-धा चटाक्-चट्-धा' यानि उठाकर पटक दे!!...यही आवाज संजीवनी शक्ति भरती रहती थी।" चल-उठ और पटक दे। जिन्दगी की लड़ाई चलने उठने और विपरीतताओं को पटक देने का ही नाम है। यही संजीवनी शक्ति है जिसे रेणु पहचानते हैं।

ढोलक की ये आवाजें इस कहानी को अद्भुत बनाती हैं। कहानी हो या उपन्यास, रेणु के कथा साहित्य में इस तरह की आवाजें हमेशा सुनायी पड़ती हैं। इन आवाज़ों को ही पकड़ने की कोशिश में रेणु एक ऐसे विशिष्ट कथा-संघटन को सम्भव बनाते हैं जिसमें पूरा अंचल सजीव हो उठता है। ध्वनियों का ऐसा विन्यास केवल आंचलिकता का प्रतीक भर नहीं है। वह कहानियों को बाहरी घटनात्मकता से मुक्त कर एक ऐसे अनुभव में बदलता है, जहाँ बाहरी यथार्थ के साथ-साथ मन का आन्तरिक यथार्थ, उस पूरे परिवेश को जीवन्त कर देता है। यह आन्तरिकता मानो देस की धड़कन की पहचान हो जिसके साथ रेणु का लगातार सांस्कृतिक संवाद बनता है।

'पहलवान की ढोलक' रेणु की आरम्भिक कहानियों में से है लेकिन तभी से बतौर कहानीकार उनके लेखन की विशिष्टता के हस्ताक्षर रूप में ये सभी तत्त्व यहाँ मौजूद हैं। इस विविधवर्णी कहानी के केन्द्र में पहलवान है जो बचपन से ही अपने अस्तित्व व सुरक्षा के संघर्ष में जीवन के प्रति अपनी ललक व अपनी जिजीविषा के कारण बचा रहा है। जीतने और हारने में ताकत और बल की बड़ी भूमिका होती है। ताकत चाहे देह की हो, चाहे पद-प्रतिष्ठा की। पहलवान की ताकत देह की है, जो उसने खुद बनायी और खुद कमाई है जबकि राजा जी की ताकत पद-प्रतिष्ठा की है। यह एक ऐसी ताकत है, जो वर्गों में बँटे समाज में उनके जन्म से बनती है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती है। राजा जी की ताकत के दिखावे में पहलवान उनका एक औजार है। लेकिन इस पूरी परिस्थिति के अन्तर्विरोध भी हैं जिन्हें रेखांकित करना, रेणु नहीं भूलते जैसे कि यह टिप्पणी कि 'बल और शरीर की वृद्धि के साथ-साथ बुद्धि घटकर बच्चों की बुद्धि के बराबर ही रह गयी थी उसमें।'

लुट्टन के सिर पर कसरत की धुन लोगों से बदला लेने के लिए ही सवार हुई थी।' यानि उसकी तैयारी अन्याय के प्रतिकार के लिए है। निर्बल के आन्तरिक बल को विकसित करने से ही उसके शरीर की ताकत बनती है। मेले में जाकर जब वह शेर के बच्चे को चुनौती देता है तो सब दंग रह जाते हैं क्योंकि उसकी देह पर तो मांस भी नहीं है। सब उसे मना करते हैं लेकिन लुट्टन की हिम्मत ने इस पूरे संघर्ष को नयी शक्ल दे दी। लुट्टन ने यह लड़ाई देह के मांस के बल पर नहीं, अपनी समझदारी और हिम्मत के बल पर जीती। वहीं से राजा जी ने उसे स्वीकार किया और वह लुट्टन से लुट्टन सिंह बन गया। गाँव समाज में जाति व्यवस्था को दरकिनार कर लुट्टन का लुट्टन सिंह बन जाना एक बड़ी घटना है। वह समाज में हाशिए पर पड़े उस व्यक्ति का प्रतिनिधि है जिसे जाति व्यवस्था लुट्टन सिंह होने का सम्मान कभी

नहीं देती लेकिन उसने अपनी पहलवानी, अपनी ताकत के बल पर यह सम्मान अर्जित किया। अपने बल और अपने रौब-दाब से वह लुट्टन सिंह बना। जब एक बार यह रौब कायम हो गया और ग्रामीण व्यवस्था के शिखरस्थ राजा साहब ने उसे लुट्टन सिंह पहलवान मान लिया, फिर किसी की मजाल नहीं कि वह उसका प्रतिकार करे। लेकिन मज़े की बात यह है कि एक राजा जो उसे इतनी शान, इतनी ताकत बख्शते हैं, उसका सब रख-रखाव करते हैं, उसके बेटों का भी भरण-पोषण करते हैं, उनके आँखें मूँदते ही व्यवस्था का व्यवहार बदल जाता है। उनकी अगली पीढ़ी, उनके बेटे के मन में लुट्टन सिंह जैसे लोगों के लिए कोई जगह नहीं है। कुश्ती और पहलवानी के बदले उसकी रुचि घोड़ों की रेस में है। पहलवान पालने की बजाय वह घोड़ा पालेंगे। इन दोनों स्थितियों को समानान्तर रखकर सोचा जाए तो लुट्टन सिंह का भले ही जो भी रोब-दाब रहा हो लेकिन वह एक राजा का मन बहलाने की वस्तु से अधिक कुछ नहीं रहा जैसे लुट्टन सिंह और रेस के घोड़े समानान्तर खड़े हैं।

राजा का बेटा पहलवान को रखने को लेकर जिस शब्द का इस्तेमाल करता है, वह है 'टेरिबुल'। सामाजिक संरचना की दृष्टि से लुट्टन पहलवान जिस तरह राजा साहब की स्वीकृति से ताकत अर्जित करता है, वैसे ही 'टेरिबुल' शब्द से अपनी ताकत खो देता है। उसकी ताकत जाने से ही यह अन्दाज होता है कि सत्ता-क्रम के इस परिसर में लुट्टन सिंह हो तो सकता है लेकिन राजाओं के तर्क के लिए उसकी हस्ती और हकीकत घोड़ों से अधिक नहीं है। इस घटना के उपरान्त वह अपने गाँव लौट आता है। गाँव लौटने पर गाँव वाले कुछ समय के लिए उसका भरण-पोषण करने को आगे आते हैं। गाँव में फिर से उसे जो प्यार और सम्मान मिलता है, वह उसे आश्वस्त करता है कि सब कुछ इतना भी 'टेरिबुल' नहीं है। रेणु ने इस शब्द का जो खास इस्तेमाल किया है उसमें वह केवल वर्ग सूचक नहीं हैं। कहानी के उतार-चढ़ाव में वह प्रतिध्वनित होता रहता है। गाँव उसके स्वाभिमान को सुरक्षित रखता है। यह स्वाभिमान लुट्टन के जीवन और मृत्यु---दोनों के सन्दर्भ में व्यक्ति से बड़ा है। उसने बस अपने जीवन में एक ही प्रण किया था कि चाहे कुछ भी हो जाए वह जीवन की लड़ाई में कभी चित्त नहीं होगा। ग्रामीण जीवन की साझेदारी उसके स्वाभिमान को सुरक्षित करते हुए उसके लिए रक्षा कवच बन जाता है। वह अकेला और असहाय नहीं। यह शहर और गाँव की जीवन शैलियों का अन्तर है जिसे रेणु ने अपने लेखन में बार-बार दोहराया है।

लेकिन समस्या इससे अधिक गम्भीर है। गाँव की जिन्दगी में सब कुछ पूरी तरह बदल नहीं पाता। वे गाँव को आदर्श गाँव नहीं बना सकते। पूरी कहानी एक ग्राफ की तरह बुनी गयी है जो गाँव में गरीबी और बीमारी के चित्र से शुरू होती है। —"अकस्मात् गाँव पर वज्रपात हुआ। पहले अनावृष्टि, फिर अन्न की कमी, तब मलेरिया और हैजे ने मिलकर गाँव को भूनना शुरू कर दिया। गाँव प्रायः सूना हो चला था। घर के घर खाली पड़ गये थे। दिन में तो कलरव हाहाकार तथा हृदय विदारक रुदन के बावजूद लोगों के चेहरे पर कुछ प्रभा दृष्टिगोचर होती थी, शायद सूर्य के प्रकाश में। ...किन्तु सूर्यास्त होते ही जब लोग अपनी-अपनी झोंपड़ियों में घुस जाते तो चूँ भी नहीं करते। उनके बोलने की शक्ति भी जाती रहती थी। पास में दम तोड़ते हुए पुत्र को अन्तिम बार बेटा कहकर पुकारने की हिम्मत माताओं को नहीं होती थी। रात्रि की विभीषिका को सिर्फ पहलवान की ढोलक ही ललकारकर चुनौती देती रहती थी।" लेकिन जो बात रेणु की कहानी कला को विलक्षण बनाती है वह इस वर्णन के पार देख पाने की कला है। गाँव की इस नियति को, वे उत्कट जिजीविषा के संस्पर्श से मायूसी या निराशा को तोड़कर उत्सव और उत्साह से देखते हैं।

"पहलवान संध्या से सुबह तक चाहे जिस खयाल से ढोलक बजाता हो किन्तु गाँव के अर्धमृत औषधि-उपचार-पथ्य-विहीन प्राणियों में वह ढोलक संजीवनी शक्ति ही भर्ती थी। बूढ़े-बच्चे—जवानों की शक्तिहीन आँखों के आगे दंगल का दृश्य नाचने लगता था। स्पन्दन-शक्ति-शून्य स्नायुओं में भी बिजली दौड़ जाती। अवश्य ही ढोलक की आवाज़ में ना तो बुखार हटाने का कोई गुण था और न महामारी की सर्वनाश गति को रोकने की शक्ति ही, पर इसमें सन्देह नहीं कि मरते हुए प्राणियों को आँख मूँदते समय कोई तकलीफ नहीं होती थी, मृत्यु से डरते नहीं थे।"

रेणु, कुशल किस्सागो की तरह कहानी में शामिल हो जाते हैं। पहलवान बार-बार कहता है कि ढोलक ही उसकी गुरु है। उसके लिए ढोलक की थाप की ध्वनियों के पर्याय अलग अलग हैं—'...चटाक्-चट्-धा, चटाक्-चट्-धा' यानि 'मारो बहादुर', तो कभी 'उठा पटक दे! उठा पटक दे!', ढोलक की ध्वनियों का सन्देश एक ही है—जीतने का, परिस्थितियों को हराने का और विषमताओं से जूझ जाने का। यह जीवन में विश्वास का सन्देश है टूटने या हारने का नहीं!

रेणु ने कहानी में तीन जगह अँग्रेज़ी शब्दों का साभिप्राय प्रयोग किया है। 'टेरिबुल' की बात हमने की ही, उसके अलावा कहानी के शुरू में ही पहलवान कहता है, "लुट्टन सिंह पहलवान को 'होल इंडिया' भर के लोग जानते हैं, " इस पर लेखक की टिपण्णी कि 'उसके 'होल इंडिया' की सीमा शायद जिले की सीमा के बराबर ही हो। जिले-भर के लोग उसके नाम से अवश्य परिचित थे।' देस का कहानीकार 'होल इंडिया' की व्यंग्यात्मक अन्तरध्वनि का रचनात्मक प्रयोग करता है। इसी तरह लुट्टन को लुट्टन सिंह कहे जाने का विरोध करता है, क्लीन-शेव्ड मैनेजर। यहाँ भी अँग्रेज़ी के प्रयोग से रेणु, जाति-वर्ग के मारक समीकरण को सरलता से उजागर कर देते हैं।

कहानी का अन्त अत्यन्त कारुणिक है। पहलवान की मृत्यु हो जाने पर, सियार उसकी देह के मांस को कुछ जगह से खा जाते हैं। गाँव में उसके शिष्य याद रखते हैं कि गुरु जी को चिता पर पेट के बल लेटाना है क्योंकि पहलवान कभी चित्त नहीं हुआ। पहलवान की इच्छानुसार चिता को आग लगाते हुए ढोलक भी बजा देते हैं और फिर अन्त में, "...पास में ही ढोलक लुढ़की पड़ी थी। सियारों ने ढोलक को 'भोज्य-पदार्थ' समझकर उसके चमड़े को फाड़ डाला था।" बिना अतिरिक्त सहानुभूति के रेणु जिस तरह स्थितियों और पात्रों को निबाह ले जाते हैं उससे मानवीय नियति के बिन्दु करुणा में बदल जाते हैं जो अंचल विशेष में स्थित होकर भी व्यापक मानवीय जीवन-स्थितियों से सम्बद्ध है। कहानी खत्म हो जाने के बाद भी मानवीय त्रासदी के बिम्ब मन को घेरे रहते हैं जो किसी देश-काल में बद्ध नहीं हैं। पहलवान का अन्त, युद्ध झेलते देशों के बच्चों की लाचार छवियाँ सजीव कर देता है। विश्व भर में स्वास्थ्य सुविधाओं के बिना भूख और बीमारी से लड़ते लाखों लोगों के चेहरे एक-दूसरे में गडमड्ड होने लगते हैं जो शेष बच रहता है वह केवल किसी भी हालात में जीवन के प्रति मनुष्य की उद्दाम ललक व हार न मानने का जज्बा ही है!

रेखा सेठी : स्त्री-कविता पर केन्द्रित दो पुस्तकों--'स्त्री-कविता पक्ष और परिप्रेक्ष्य' तथा 'स्त्री-कविता पहचान और द्वंद्व' प्रकाशित।'विज्ञापनः भाषा और संरचना', 'विज्ञापन डॉट कॉम', 'व्यक्ति और व्यवस्थाः स्वांतत्रयोत्तर हिन्दी कहानी का सन्दर्भ' एवं कई सम्पादित पुस्तकें प्रकाशित। सुकृता पॉल कुमार की अँग्रेज़ी कविताओं का हिन्दी अनुवाद 'समय की कसक' शीर्षक से प्रकाशित। लेख व पुस्तक समीक्षाओं का 'जनसत्ता', 'नया ज्ञानोदय', 'पूर्वग्रह', 'संवेद', 'हंस', 'दी बुक रिव्यु', इंडियन लिटरेचर' आदि पत्र-पत्रिकाओं में नियमित प्रकाशन। सम्प्रतिः दिल्ली विश्वविद्यालय के इन्द्रप्रस्थ कॉलेज में प्राध्यापक।

सम्पर्क : reksethi@gmail.com; 9810985759